Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श तथा इसकी उपयोगिता

डॉ. गुंजन त्रिपाठी
1N/5C, तिलक नगर
अल्लापुर, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश :– प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्री विमर्श किसी न किसी रूप में विचारणीय विषय रहा है। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श की जहां तक बात है तो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हमारे देश में जो नारीवादी आंदोलन हुए उन आंदोलनों से भारतीय साहित्य काफी प्रभावित हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की जिस नारीवादी विचारधारों के प्रभाव के कारण ऐसा हुए है; वह स्वीकार करने के बावजूद कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श कभी तो संसार की समस्त नारियों द्वारा समस्त पुरुषों का विरोध करने वाली विचारधारा के रूप में उभरकर सामने आया तो कभी यह स्त्री की उन्मुक्त सेक्स की वकालत करने वाले साहित्य के रूप में सामने आया। हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री–विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़िया नारी सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रूप में नहीं लिखा जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखी है। अतः स्त्री–विमर्श की शुरूआती गुंज पश्चिम में देखने को मिला। सन् 1960 ई. के आस–पास नारी सशक्तिकरण जोर पकड़ी जिसमें चार नाम चर्चित हैं। उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती मन्नू भण्डारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी मन की अर्न्तद्वन्द्वों एवं आप बीती घटनाओं को उकरेना शुरू किए और आज स्त्री–विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है। आठवें दशक तक आते–आते यही विषय एक आन्दोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती स्त्री–विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रेयी पुष्पा तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी जो पितृसत्ता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की गुंज अब देह मुक्ति के रूप में परिलक्षित होने लगा।

मुख्य शब्द– स्त्री विमर्श, पृष्ठभूमि, आन्दोलन, देहमुक्ति, नारी सशक्तिकरण आदि।

आधुनिक हिंदी–साहित्य में नारी, चेतना और सर्जना के बीचों–बीच खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री–पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले। लगभग 70 वर्षों में काफी काम हुआ है। डॉ. ओमप्रकाश लिखते हैं– वर्ष 1974 में 'प्रगतिशील महिला संगठन का गठन हुआ इसके बाद महिला मुद्दों को अखबारों

पत्रिकाओं आदि में प्रमुख स्थान मिलने लगा।'' वैदिक काल नारी का उत्कर्ष काल रहा है, किन्तु धीरे–धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया।[1]

हिंदी साहित्य का आदि–काव्य धार्मिक उपदेशों एवं वीर–गाथाओं के रूप में लिखा गया है। पहला वीरकाव्य के रूप में दूसरा मधुर भक्ति के रूप में। तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार वीरगाथा काल में नारी के कामिनी एवं वीरांगना रूप दृष्टिगत होते हैं। इस समाज के काव्य में ''जाकी बिटिया सुन्दर देखी ताहि पै जाए धरे हथियार'' वाली कहावत चरितार्थ होती है। उस समय स्त्री संघर्ष के बीज के रूप में थी क्योंकि स्त्रियों के कारण राजा–महाराजाओं के भी युद्ध हो जाते थे। वीर–पत्नी अपने जीवन की सार्थकता अपने स्वामी के वीरोचित कर्मों में ही समझती थी। यदि उसका पति वीरगति को भी प्राप्त हो जाए तो वह उसके साथ ही मरने को तैयार हो जाती थी।

हिन्दी साहित्य स्वतन्त्रतापूर्व हो या स्वतंत्र्योत्तर हो, नारी का चित्रण उसका एक अविभाज्य अंग है। भारतेन्दु कालखंड से लेकर आज तक के सभी साहित्यों पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश साहित्यकारों ने अपने साहित्य में कुछ ऐसे नारी पात्रों की योजना की है जो नारी के शोषण, उन पर होने वाले अन्याय अत्याचार, विभिन्न समस्याएँ, उनसे मुक्ति, अपने स्व की खोज..... आदि को व्यक्त करने में सक्षम है।''

महिला साहित्यकारों के साथ–साथ पुरुष साहित्यकारों ने भी नारी समस्या एवं नारी के विभिन्न रूपों का अपने साहित्यों के केंद्र में रखा है। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क के परिणामस्वरूप और विभिन्न भारतीय सामाजिक आंदोलनों के कारण राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोंण बदल रहा था। इस बदले हुए नवीन दृष्टिकोंण को लेकर आधुनिक साहित्य का भी विकास हुआ हिन्दी साहित्य का यह प्रारम्भिक काल था।

भारतेन्दु युग :– इस युग के साहित्यकारों का ध्यान पहली बार स्त्रियों की सामाजिक दशा की ओर आकृष्ट हुआ। स्वयं भारतेन्दु तथा इस युग के अन्य साहित्यकार भारतीय स्त्री की दयनीय स्थिति से परिचित थे। वे उनकी स्थिति में सुधार लाने के पक्षधर थे, उन्होंने पाश्चात्य–नारी के दुर्गुणों को छोड़कर अच्छे गुणों की सराहना की और भारतीय नारी को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। भारतेन्दु के बाद के लेखकों में इनके जैसी नवीन दृष्टि नहीं है। वे भारतीय नारी को पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा के प्रसार से दूर रखना चाहते है। यद्यपि उन्होंने नारी की तत्कालीन समस्याएँ जैसे बाल–विवाह, अनमेल विवाह, विधवा और वेश्या को वर्ण्य विषय तो बनाया है किन्तु इनका चित्रण और समाधान प्राचीन मान्यताओं के अनुसार ही किया है।

द्विवेदी युग :– सामाजिक कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना ही द्विवेदी युगीन साहित्यकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा। ''अधखिला फूल'' हरिऔध जी का सफल साहित्य है। इसमें नारी जीवन की अनेक समस्याओं को चित्रित किया गया है। प. लज्जाराम मेहता की रचना में भी स्त्री को पर्याप्त महत्व प्राप्त हुआ है।

प्रेमचन्द युग :– प्रेमचन्द युग विचार के क्षेत्र में, संक्रांति और संघर्ष का काल था। परंपरा और नए जीवनादर्शों में द्वंद है, और इसी द्वंद में संधि की भावना है। यथार्थ जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपना प्रतिपाद्य बनाने पर भी प्रेमचन्द युगीन लेखन परंपरागत भारतीय जीवन–मूल्यों के प्रति अपने मोह को छोड़ नहीं सके और उनकी परिणति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में की। यहाँ तक की साहित्य में स्त्री को लेकर स्टीरियो टाइप बहुत खुले रूप में मौजूद है।[2]

आधुनिक काल (वर्ष 1900 से अब तक) शुरू हो गया था। देश की स्थिति करवट बदलने लगी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय समाज की विचारधारा में कुछ परिवर्तन आया और पाश्चात्य साहित्य में वर्णित मानव–प्रेम ने भी इन कवियों को प्रभावित कया। श्रीमती एनी बेसेंट, जी.के. देवधर, ईश्वर चन्द विद्या सागर, चन्दर सेन, महात्मा गांधी आदि समाज सुधाकों ने भारतीय नारी की पतनोन्मुख अवस्था को सुधारने को प्रबल समर्थन दिया। भारतेंदु जी ने स्त्री–शिक्षा के प्रचार हेतु इस बात पर बल दिया है कि नारी ही मानव एवं समाज का सुधार कर सकती है।[3]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पिछले दो–तीन दशकों से स्त्री लेखन में ज्यादा उभार आया है किन्तु यह कड़ी महादेवी वर्मा के लेखन के साथ ही आरंभ हो गयी थी। आज भी जब स्त्री–लेखन में स्त्री जीवन और उसकी समस्याओं से जुड़ी बातों, स्त्री–पुरुष संबंधों कि तलाश की जाती है तो महादेवी वर्मा कि रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक निबंध संग्रह का उल्लेख करना लाजमी हो जाता है। इन निबंधों में उनके द्वारा व्यक्त विचार वर्तमान स्त्री लेखन को एक रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करते है। ''आज हमारी परिस्थिति कुछ और ही है। स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर रहना चाहती है और न ही देवता कि मूर्ति बनकर प्राण–प्रतिष्ठा चाहती है। कारण यह जान गयी है कि एक का अर्थ अन्य कि शोभा बढ़ाना है तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाना है तथा दूसरे का अभिप्राय दूर से पुजापे को देखते रहना है, जिसे उसे न देकर उसी के नाम पर लोग बाँट लेंगे। जीवन के हर क्षेत्र की तरह एक लंबे समय तक स्त्री साहित्य लेखन के क्षेत्र से भी अनुपस्थित रही है। पुनर्जागरण तथा स्वतन्त्रता आंदोलन के दौर में यदा–कदा यदि वह नजर भी आई है तो अपनी विशिष्ट पहचान रेखांकित नहीं कर सकी। परंतु पिछले कुछ दशक से लेखन के क्षेत्र में महिलाओं की सशक्त भागीदरी बढ़ी है। स्वातंत्रयोत्तर कालखंड में कई महिला रचनाकारों का समान रूप से योगदान प्राप्त होता है। ऐसे उपन्यास हमें प्राप्त होते हैं, जो मात्र नारी जीवन कि विभिन्न परिस्थितियों को उद्घाटित करते हैं।

समाज के दो पहलू स्त्री–पुरुष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी पुरूष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। यही पक्षपात दृष्टि से शिक्षित नारियों को आंदोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी–विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है। आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। स्त्रियों की दशा को देखकर विवेकानंद कहते है– स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना सम्भव

नहीं है।[4] विवेकानंद जी महिला समाज की वास्तविक दशा से चिंतित, देश एवं समाज के भलाई महिला समाज के तरक्की के बगैर असंभव बताया है।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह स्वातिबूंद और खारे मोती तथा यह तुम भी जानों काफी चर्चित रहे हैं। इनकी विद्रोहणी कविता में आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है–

''मां–बाप ने पैदा किया था गूंगा

परिवेश ने लंगड़ा बना दिया

चलती रही परिपाटी पर

बैसाखियां चरमराती हैं।

अधिक बोझ से अकुलाकर

विस्कारित मन हुंकारता है

बैसाखियों को तोड़ दूं।''[5]

उपर्युक्त कविता स्त्री–जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित कर रही है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी गद्यकार एवं कवि रघुवीर सहायजी नारी जीवन की वास्तविक चित्र खिंचा हैं, उन्होंने अपने काव्य में स्वतंत्रता के बाद स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को विषय बनाया है। जिस भारत में स्त्री वैदिक काल में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते तत्र रमंते देवता'' कहा जाता था आज वही अनेक शोषण का शिकार हो रही है। वह कहता है–

''नारी बेचारी है

पुरूष की मारी

तन से क्षुदित है

लपक कर झपक कर

अंत में चित्त है।''[6]

प्रस्तुत पंक्ति में कविवर सहाय जी नारी को बेचारी कहकर उसकी दयनीय दशा का वर्णन किया है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ नहीं पाती। लेकिन वर्तमान में यह स्थिति परिवर्तित नजर आती है। भारत सरकार ने सन् 2001 को महिलाओं के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित किया। अब नारी अपनी हरेक अधिकार को लेकर रहेगी। यही लड़ाई स्त्री–विमर्श या नारी सशक्तिकरण के रूप में परिलक्षित होती है। हिंदी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सीमित नहीं है। उसके और भी कुछ आयाम हैं और इन आयामों को भी

तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न सिर्फ चंद नामों के आधार पर एक खास दायरे में बाँधने की। कला साहित्य के हर विचारधारात्मक संघर्ष के पीछे अपने समय और समाज के परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना जरूरी है। यहाँ तक कि स्त्री की स्थिति को निर्धारित करने वाले संस्थाओं में आये परिवर्तनों को भी लक्ष्य करना जरुरी है। हम नहीं जानते कि वह स्त्री कौन थी या उसकी माँग क्या थी। हो सकता है उसकी पहली लड़ाई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर ही रही हो। परन्तु राजधानी दिल्ली में 16 दिसम्बर, 2012 की घटना के बाद उठने वाला आन्दोलन सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए संघर्षो के लम्बे इतिहास का एक बड़ा अध्याय है और इस अध्याय का इस रूप में लिखा जाना तभी संभव हो सका जब उसकी एक मजबूत पृष्ठभूमि निर्मित हो चुकी थी। चाहे मथुरा रेप केस रहा हो या उन्नाव रेप केस रहा हो, यहाँ के पुरुषवादी सत्ता–विमर्श की विद्रूपता को दिखाने के लिए ऐसे हजारों नाम लिए जा सकते हैं और उनके विरोध में उठने वाले छोटे से छोटे स्वर को भी सांस्कृतिक वर्चस्व का प्रतिरोध माना जाना चाहिए। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारी आदिकाल से ही पीड़ित एवं शोषित रही है पुरूष प्रधान समाज मान मर्यादा के आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा। कभी घर का इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दीवारों के अन्दर कैद ही रखा। इन्हीं परम्परागत पितृसत्तात्मक बेड़ियों को लांघने की लड़ाई है स्त्री–विमर्श।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, समकालीन महिला लेखन, पृष्ठ–21, पूजा प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. डॉ. राम चन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–82, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
3. डॉ. उषा पाण्डेय, समकालीन हिन्दी के पत्र साहित्य में नारी विषयक चिंतन, पृष्ठ–68, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. निवेदिता मेनन, साधना आर्य, जिनी लोकनीता (संपादित), नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माद्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013
5. अरविंद जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013
6. रेखा कस्तवार स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009